इकाई 1 स्वतंत्रता के समय भारतीय अर्थव्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 अठारहवीं शताब्दी के मध्य में भारतीय अर्थव्यवस्था

- 1.2.1 ब्रिटिश-पूर्व भारत में ग्रामीण व्यवस्था का स्वरूप
- 1.2.2 ब्रिटिश-पूर्व भारत में शहरी व्यवस्था का स्वरूप
- 1.2.3 निष्कर्ष

1.3 भारत में अंग्रेज़ों का आगमन

1.4 स्वतंत्रता के समय भारतीय अर्थव्यवस्था

- 1.4.1 स्वतंत्रता की पूर्व-संध्या पर भारतीय कृषि की दशा
- 1.4.2 स्वतंत्रता की पूर्व-संध्या पर भारतीय उद्योगों की दशा
- 1.4.3 स्वतंत्रता की पूर्व-संध्या पर करेंसी एवं बैंकिंग व्यवस्था की दशा
- 1.4.4 स्वतंत्रता की पूर्व-संध्या पर औद्योगिक उपरिढाँचे की दशा
- 1.4.5 स्वतंत्रता की पूर्व-संध्या पर सामाजिक संस्थाओं की दशा

1.5 स्वतंत्रता के समय भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ

- 1.5.1 भारतीय अर्थव्यवस्था : एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था
- 1.5.2 भारतीय अर्थव्यवस्था : एक पराश्रित अर्थव्यवस्था

1.6 भारत का विभाजन

1.7 सारांश

1.8 शब्दावली

1.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा संकेत

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप:

- आर्थिक विकास की समस्या को ऐतिहासिक परिवेश में देखने की उपयोगिता जान सकेंगे;
- ब्रिटिश-पूर्व भारत की ग्रामीण एवं शहरी व्यवस्था की विशेषताओं की पहचान कर सकेंगे;
- अंग्रेज़ों के भारत आगमन के समय ऐसी क्या परिस्थितियाँ थीं जो तेज़ गति से विकास के अनुकूल थीं उनकी पहचान कर सकेंगे;
- उन परिस्थितियों की समीक्षा कर सकेंगे जिनमें अंग्रेज़ भारत में प्रवेश पा सके;
- स्वतंत्रता की पूर्व-संध्या पर भारतीय अर्थव्यवस्था में विभिन्न क्षेत्रों की स्थिति की जाँच कर सकेंगे;
- स्वतंत्रता की पूर्व-संध्या पर गरीबी के स्वरूप एवं आकार की समीक्षा कर सकेंगे; तथा
- आर्थिक विकास पर पड़ने वाले देश के विभाजन के प्रभावों की चर्चा कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

भारत में गरीबी विशाल रूप से फैली हुई है। भारत को एक गरीब देश की संज्ञा दिया जाना उचित भी है। भारत में गरीबी अंग्रेज़ी राज की देन है। अंग्रेज़ों के आने से पहले भारत की अर्थव्यवस्था सुदृढ़ एवं स्वाबलम्बी थी। अनेक विदेशी यात्रियों के उस समय के वृतान्त से हमें मालूम होता है कि अन्य देशों की तुलना में भारत आर्थिक दृष्टि से कहीं अधिक विकसित देश था। यहाँ के कला-कौशल तथा औद्योगिक जानकारी की भूरि-भूरि प्रशंसा भी की गई है। वैसे भी प्राचीन भारत "सोने की चिड़िया" के नाम से प्रसिद्ध था ही। किंतु 200 वर्षों के विदेशी शासन ने भारतीय अर्थव्यवस्था को जर्जरमात्र बनाकर रख दिया।

प्रस्तुत इकाई में उन परिस्थितियों का वर्णन करेंगे जिनके दबाव में भारत की अर्थव्यवस्था का सुडौल, सुदृढ़ एवं स्वाबलम्बी ढाँचा टूट गया और परिणामस्वरूप भारत एक पिछड़ा हुआ देश कहलाने लगा। हम इस क्रम में देखेंगे कि अंग्रेज़ों ने किस तरह भारतीय अर्थव्यवस्था को लूटा और इसे जीर्ण-शीर्ण बनाकर रख दिया। इकाई के अंतिम भाग में अंग्रेज़ी राज के दुष्परिणामों का सार प्रस्तुत करते हुए स्वतंत्रता की पूर्व-संध्या पर भारतीय अर्थव्यवस्था के स्वरूप की समीक्षा करेंगे।

इस प्रकार के वर्णन एवं समीक्षा से यह स्पष्ट हो जाएगा कि आर्थिक विकास की समस्या का अध्ययन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में बहुत उपयोगी हो सकता है। स्वतंत्रता उपरान्त पिछले पाँच दशकों में इस समस्या के समाधान के लिए जो प्रयास किए गए हैं उनकी उचित समीक्षा भी इसी पृष्ठभूमि में की जा सकती है।

1.2 अठारहवीं शताब्दी के मध्य में भारतीय अर्थव्यवस्था

ब्रिटिश-पूर्व भारत की आर्थिक प्रणाली की जानकारी लेने के लिए हम उस समय की ग्रामीण एवं शहरी व्यवस्था की समीक्षा करना चाहेंगे।

1.2.1 ब्रिटिश-पूर्व भारत में ग्रामीण व्यवस्था का स्वरूप

ब्रिटिश-पूर्व भारत में ग्रामीण समाज एक आत्मनिर्भर व्यवस्था के रूप में संगठित थे। इनका प्रमुख पेशा खेती-बाड़ी था। खेती में प्रचलित तरीकों और पुराने उपकरणों का प्रयोग किया जाता था। हथकरघा आदि भी सीमित मात्रा में जीविका के साधन थे तथा इनमें भी वही सीधी-सादी उत्पादन प्रणालियाँ प्रयोग में लाई जाती थीं।

इस प्रकार की ग्रामीण व्यवस्था अनेक शताब्दियों पूर्व भारत में स्थापित हो पाई थी। वे आत्मनिर्भर आर्थिक इकाइयाँ थीं। समय के साथ-साथ इनके स्वरूप में थोड़े-बहुत परिवर्तन जरूर हुए किंतु इनके आत्मनिर्भर स्वरूप को कोई चुनौती नहीं दी गई। अंग्रेज़ी शासन की स्थापना के साथ ग्रामीण व्यवस्था के इस मौलिक ढाँचे को ही खतरा बन आया।

ग्रामीण समाज मुख्यत: कृषकों का समूह था। गाँव की समस्त भूमि ग्रामीण समुदाय के अधिकार में होती थी। ग्रामीण समुदाय का प्रतिनिधित्व गाँव-सभाएँ किया करतीं थीं। गाँव सभाएँ सभी गाँववासियों में उपलब्ध भूमि बाँट दिया करती थीं। प्रत्येक परिवार के हिस्से में आने वाली भूमि की इकाई को जोत कहा जाता था। प्रत्येक जोत पर कृषक परिवार खेती किया करते थे। वे अपने ही परविार के सदस्यों के सहयोग से यह काम करते थे। वे प्राय: प्राचीन एवं सरल कृषि उपकरणों का ही प्रयोग करते थे। परिवार द्वारा जोती गई भूमि पर परिवार के स्थायी अधिकार होते थे तथा भूमि पर उत्तराधिकारियों का पूर्व-अधिकार होता था। कृषि उत्पादों का प्रयोग कृषकों द्वारा अपने परिवार तथा ग्रामीण समुदाय की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जाता था। ग्रामीण समुदाय में कृषकों के अलावा, दूसरे पेशे वाले लोग भी रहते थे, जैसे, धोबी, नाई, जुलाहा, कुम्हार, तेली, बढ़ई, मोची आदि। ये सभी ग्रामीण समुदाय के लिए काम करते थे।

गाँव में उत्पादित समस्त वस्तुओं एवं सेवाओं का आदान-प्रदान एक गाँव की सीमा तक ही सीमित रहता था तथा गाँव से बाहर प्राय: लेन-देन नहीं किए जाते थे। जो थोड़ा-बहुत लेन-देन होता था उसके लिए प्रत्येक सप्ताह एक निर्धारित दिन में किसी बड़े गाँव में बाज़ार का आयोजन किया जाता था जिसमें कि आसपास के अनेक गाँवों से ग्रामवासी आते थे तथा वस्तुएँ खरीदते और बेचते थे।

1.2.2 ब्रिटिश-पूर्व भारत में शहरी व्यवस्था का स्वरूप

भारत प्रमुख रूप से गाँवों में ही रहता था लेकिन फिर भी थोड़े-बहुत शहर भी विकसित हो चुके थे। इन शहरों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है : (1) राजनैतिक भूमिका रखने वाले शहर; (2) धार्मिक महत्त्व वाले शहर; एवं (3) व्यापारिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण शहर। शहरों में विकसित हस्तकला के उद्योग पाए जाते थे। इन उद्योगों में समाज के सम्पन्न वर्ग के लिए विलासितापूर्ण कलाकृतियों का निर्माण किया जाता था। इन कारीगरों द्वारा युद्ध के लिए शस्त्रास्त्र एवं सेना की आवश्यकता की आपूर्ति के लिए साज-सामान बनाया जाता था। इन्हीं कारीगरों द्वारा विशालकाय सेना के किलों के निर्माण के अलावा, शानदार महलों, बड़े-बड़े मंदिरों एवं ताजमहल तथा कुतुब मीनार जैसी अनूठी इमारतों का भी निर्माण किया गया। शहरी उद्योगों द्वारा बड़ी-बड़ी नहरें भी बनाई गईं। संक्षेप में, कला की दृष्टि से भारतीय उद्योग चरम शिखर पर पहुँच चुके थे। ये विश्व-प्रसिद्ध उद्योग थे तथा बहुत बड़ी मात्रा में इनके उत्पादों की विदेशी बाजारों में माँग की जाती थी।

1.2.3 निष्कर्ष

संक्षेप, अंग्रेज़ों के भारत आने से पहले भारतीय अर्थव्यवस्था स्वाबलम्बी और संतुलित स्वरूप की थी। आधुनिक दृष्टि से उस समय की अर्थव्यवस्था को हम विकसित अर्थव्यवस्था तो नहीं कह सकते लेकिन इतना जरूर था कि उस समय की अर्थव्यवस्था पर्याप्त दर से आगे बढ़ रही थी। कृषि और उद्योगों के विकास में एक सराहनीय संतुलन था यानि कि दोनों क्षेत्र ही एक दृष्टि से आगे बढ़ रहे थे।

हालाँकि, अगर उस समय की अर्थव्यवस्था में विकसित तकनीक आरंभ कर दिया जाता और पर्याप्त आधारिक ढाँचे (infrastructure) की सेवाएँ उपलब्ध करवा दी जातीं तो तेज गति से आर्थिक विकास संभव हो पाता।

1.3 भारत में अंग्रेज़ों का आगमन

अंग्रेज़ों का व्यावसायिक अभियान 31 दिसम्बर, 1600 को आरंभ हुआ जबकि ईस्ट इण्डिया कम्पनी को पूर्व क्षेत्रीय व्यापार का एकाधिकार प्रदान किया गया। यह कम्पनी धीरे-धीरे भारत के समस्त व्यापारिक क्षेत्र पर छाने लगी। सन् 1757 में प्लासी के युद्ध में बंगाल के नवाब को हराकर ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने राजनैतिक सत्ता भी हड़प ली। सन् 1858 में राजनैतिक सत्ता ब्रिटिश सरकार के हाथों चली गई और भारत ब्रिटिश शासन की बस्ती (colony) मात्र बन गया। अंग्रज़ों ने भारत में एक नई आर्थिक व्यवस्था स्थापित करने के प्रयास किए। ये बाज़ार-व्यवस्था थी।

बाज़ार व्यवस्था की स्थापना के परिणामस्वरूप उससे पूर्व कृषि और औद्योगिक क्षेत्रों का संतुलन गड़-बड़ा गया। कृषक, व्यापारी एवं उत्पादक, कारीगर, कृषि-श्रमिक एवं औद्योगिक श्रमिक आदि सब वर्ग के लोगों को बाज़ार के थपेड़ों की मार सहन करनी पड़ी। किंतु बाज़ार प्रणाली के माध्यम से अंग्रेज़ों द्वारा भारतीय अर्थव्यवस्था के औपनिवेशवादी शोषण के सारे रास्ते खुल गए। शोषण इतने बड़े स्तर पर किया गया कि इसे राष्ट्रीय सम्पदा के निष्कासन की संज्ञा दी गई।

बोध प्रश्न 1

1) ब्रिटिश-पूर्व भारतीय समाज की मौलिक विशेषताएँ संक्षेप में बताइए।

.....

.....

.....

.....

2) ग्रामीण उत्पादों के विनिमय का क्या स्वरूप था?

.....

.....

.....

3) भारतीय उद्योगों द्वारा निर्मित उत्पादों के विनिमय का क्या स्वरूप था?

.....

.....

.....

.....

4) क्या ब्रिटिश-पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था एक विकसित अर्थव्यवस्था थी?

.....

.....

.....

.....

1.4 स्वतंत्रता के समय भारतीय अर्थव्यवस्था

200 वर्षों तक लगातार चलने वाले औपनिवेशिक शोषण और आर्थिक निष्कासन की प्रक्रिया ने भारतीय अर्थव्यवस्था को अस्त-व्यस्त करके छोड़ दिया। स्वतंत्रता के समय भारतीय अर्थव्यवस्था एक पिछड़ी हुई जड़ व्यवस्था थी जहाँ गरीबी विकराल रूप में फैली हुई थी। संपूर्ण अर्थव्यवस्था इंग्लैण्ड और अंग्रेज़ों के हितों के अनुरूप ढाली जा चुकी थी। अर्थव्यवस्था पूरी तरह से पराश्रयी (dependent) बन चुकी थी। देश के विभाजन ने बाकी बची-खुची कमियाँ भी पूरी कर दीं और देश को अनगिनत समस्याओं को सामना करना पड़ा। हम इन सभी पहलुओं की यहाँ समीक्षा करेंगे।

1.4.1 स्वतंत्रता की पूर्व-संध्या पर भारतीय कृषि की दशा

भारत में कृषि जीविका का प्रमुख साधन रही है। स्वतंत्रता की पूर्व-संध्या पर भी स्थिति कुछ ऐसी ही थी। कुल श्रम-शक्ति में लगभग 70 प्रतिशत कृषि क्षेत्र पर जीविका के लिए निर्भर थे। राष्ट्रीय उत्पाद के लगभग 50 प्रतिशत भाग का सृजन इसी क्षेत्र में किया जाता था। निवल जोती गई भूमि का क्षेत्रफल लगभग 1270 लाख हैक्टेयर था जो कि कुल भौगोलिक क्षेत्र के 43.6 प्रतिशत के बराबर था। खेती के अन्तर्गत कुल क्षेत्रफल के 80 प्रतिशत भाग पर खाद्यान्न फसलों की खेती की जाती थी जबकि गैर-खाद्यान्न फसलों के अन्तर्गत केवल 19 प्रतिशत भाग ही 471 प्रमुख फसलें थीं। गेहूँ, धान, मोटे अनाज, गन्ना, कपास एवं पटसन। विश्व के 41 प्रतिशत और धान के 27 प्रतिशत भाग का उत्पादन भारत में होता था। भारत मूँगफली, गन्ना एवं पटसन का विश्व में सबसे बड़ा उत्पादक और अमरीका और चीन के बाद कपास का सबसे बड़ा उत्पादक देश था।

उपरोक्त के बावजूद, भारतीय कृषि में उत्पादकता का स्तर बहुत भिन्न था जैसा कि तालिका-1 मे स्पष्ट है:

तालिका : 1 प्रति हेक्टेयर उत्पादन (वर्ष 1946)
(क्विंटल में)

देश	धान	गेहूँ	बाजरा	मक्का
इटली	41.7	13.3	9.7	15.1
स्पेन	42.2	9.6	12.9	14.3
अर्जेन्टीना	33.9	10.0	11.9	22.3
जापान	36.9	9.7	10.7	12.5
भारत	12.3	6.0	7.9	6.2
कुल विश्व की औसत	**16.7**	**10.3**	**11.1**	**15.2**

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि भारतीय कृषि की उत्पादकता बहुत ही निम्न दर्जे की थी। कृषि की निम्न उत्पादकता के लिए अनेक कारक जिम्मेदार थे जिनमें दो प्रमुख थे :

i) भूमि पर जनसंख्या का बढ़ता दबाव एवं

ii) भारत में ब्रिटिश सरकार द्वारा कृषि-सुधारों की अवहेलना।

i) **भूमि पर जनसंख्या का बढ़ता दबाव :** बहुत सारे भारतीय दस्तकार ब्रिटिश उद्योगों की वस्तुओं के आगमन से बर्बाद हो गए। भारतीय कृषक परंपरावादी तथा प्राचीन उत्पादन तरीकों के सहारे ही खेती-बाड़ी में लगा रहा। कृषि मात्र जीविका का साधन बनकर रह गई। किंतु दस्तकारों और हस्तशिल्पों के बढ़ते विनाश के परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में कारीगर शहरों से गाँवों की ओर पलायन करने लगे। कृषि-भूमि पर जनसंख्या का दबाव निरंतर बढ़ता गया और इस क्षेत्र की उत्पादकता क्रमश: गिरती गई। भूमि जोतों का विखण्डन और उप-विभाजन होने लगा। कृषक की स्थिति दयनीय होती गई। उनकी आय जो भी थोड़ा-बहुत साधन था वह भी खत्म होता चला गया और किसान की स्थिति बदतर होती चली गई। स्वभावत: दीन-हीन किसानों से खेती-बाड़ी में किसी तरह के सुधारों की अपेक्षा नहीं की जा सकती थी। संक्षेप में, स्वतंत्रता के समय भारतीय कृषि पिछड़ी हुई थी तथा यहाँ उत्पादकता निम्न स्तर की थी।

ii) **भारत में ब्रिटिश सरकार द्वारा कृषि-सुधारों की अवहेलना :** स्वतंत्रता की पूर्व संध्या पर भारतीय कृषि में जो संस्थागत एवं संरचनात्मक ढाँचा पाया गया वह कृषि-विकास के अनुकूल नहीं था। अंग्रेज़ों द्वारा भारत में जमींदारी प्रथा लागू की गई थी। यह प्रणाली देश के कुल के 62 प्रतिशत भाग पर लागू की गई। शेष 38 प्रतिशत भाग में रैयतवाड़ी प्रणाली लागू थी। ज़मीदार किसानों का शोषण करने में लग गए, कुल उत्पादन का बड़ा हिस्सा ज़मीदारों द्वारा हथिया लिया जाता था जबकि किसानों के पास भूमि-व्यवस्था में सुधार के लिए कुछ नहीं बच पाता था।

इसी तरह, हालाँकि नहरों का जाल बिछाया गया लेकिन आवश्यकताओं की तुलना में यह सर्वथा अपर्याप्त था। कुल कृषि क्षेत्रफल के केवल 17 प्रतिशत भाग में ही यह सुविधा उपलब्ध थी। कृषि उत्पादों की बिक्री की समुचित व्यवस्था का अभाव था। इसी वास्ते कोई सरकारी व्यवस्था भी नहीं की गई थी। वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किसान स्थानीय साहूकारों पर निर्भर करता था।

संक्षेप में, समूचा कृषि क्षेत्र ह्रास एवं जड़ता की दलदल में जकड़ा हुआ था। किसान की दशा बहुत ही दयनीय थी। इस तरह की व्यवस्था भावी विकास के रास्ते में गम्भीर गतिरोध ही बन सकती थी, अत: इस व्यवस्था में तत्काल सुधार लाने की आवश्यकता थी।

1.4.2 स्वतंत्रता की पूर्व-संध्या पर भारतीय उद्योगों की दशा

ब्रिटिश-पूर्व भारत में हस्तशिल्पियों और कारीगरों की धाक जमी हुई थी। ब्रिटिश-राज के दौरान भारत में मशीनों का प्रयोग करने वाले उद्योगों की स्थापना की गई। किंतु, भारत में औद्योगीकरण की मात्रा अपर्याप्त एवं एक-तरफा ही रही।

भारत के औद्योगिक पिछड़ेपन का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि वर्ष 1948-49 में भारत की कुल राष्ट्रीय आय का केवल 6.6 प्रतिशत भाग फैक्ट्री क्षेत्र से प्राप्त होता था। फैक्ट्री क्षेत्र में लगभग 24 लाख श्रमिक लगे हुए थे जो देश की कुल कार्यशील जनसंख्या के केवल 1.8 प्रतिशत के बराबर थे। हालाँकि निरपेक्ष रूप से औद्योगिक उत्पाद की मात्रा काफी बड़ी प्रतीत होती थी किंतु प्रति व्यक्ति औद्योगिक उत्पाद की मात्रा नगण्य थी। प्रथम विश्व-युद्ध से पहले भारत में जो बड़े उद्योग विकसित हो पाए थे उनमें कपड़ा एवं पटसन उद्योग प्रमुख थे। इन उद्योगों में भारत को प्राकृतिक श्रेष्ठता प्राप्त थी। बीसवें विश्व-युद्ध के दौरान भारतीय उद्योगों में विद्यमान उत्पादन क्षमता का भरपूर उपयोग करने के अवसर मिले। परिणामत: औद्योगिक उत्पादन के स्तर में असाधारण वृद्धि हुई।

किंतु, युद्ध के परिवेश में औद्योगिक ढाँचे को प्रभावित करने वाले दीर्घकालिक कारकों की अवहेलना की गई। इस दौरान, उपभोक्ता वस्तु उद्योगों की स्थापना पर ही जोर दिया गया जबकि मौलिक एवं पूँजीगत वस्तु उद्योगों की अवहेलना की गई। लौह-इस्पात, एल्मुनियम, रसायन, उर्वरक, पेट्रोल-पदार्थों आदि के उत्पादन के अभाव में औद्योगिक-क्षेत्र में सीमित विकास की संभावनाएँ ही बनी रहीं। बिजली-उत्पादन, रसायन, दवाएँ आदि क्षेत्रों में भी कुछ अधकचे प्रयास किए गए।

मशीनों के निर्माण के क्षेत्र में केवल सूती कपड़ा मशीन निर्माण का ही विकास सम्मत हो पाया था। ऊर्जा-निर्माण क्षेत्र का विकास विदेशों से मशीनों के आपात पर पूरी तरह से निर्भर था। कृत्रिम दवाओं, रसायनों, रंगों आदि के निर्माण का भाग छोटे-छोटे स्तर पर ही आरम्भ हो पाया था।

संक्षेप में, अन्तर-क्षेत्रीय दृष्टिकोण एवं अन्तर-औद्योगिक दृष्टिकोण किसी भी रूप में संतुलित औद्योगिक विकास सम्भव नहीं हो पाया था। भारतीय उद्योग अपनी समस्त आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिए विदेशों से आयात पर निर्भर कर रहे थे।

1.4.3 स्वतंत्रता की पूर्व-संध्या पर करेंसी वं बैंकिंग व्यवस्था की दशा

अंग्रेज़ों के आने से पहले भारत में विभिन्न स्थानों पर सोने और चाँदी के अलग-अलग सिक्के चला करते थे। सन् 1806 में ईस्ट इण्डिया कंपनी ने चाँदी के रुपए को मानक सिक्के के रूप में मान्यता दी। सन् 1835 में रुपए की परिभाषा इस प्रकार की गई : रुपया चाँदी का वह सिक्का जो वज़न में 150 कण द्वारा और जिसकी शुद्धता 11/12 वाँ भाग थी। साथ ही, रुपए को एकमात्र वैध मुद्रा (Legal tender) घोषित कर दिया गया। उसके बाद रुपए का स्वरूप बदलता रहा, किंतु भारत में एक ही मुद्रा-प्रणाली प्रचलित रही।

18वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में और 19वीं शताब्दी के दौरान भारत में अनेक आधुनिक बैंक स्थापित किए गए। ये बैंक यूरोपीय ढंग से काम करते थे। 19वीं शताब्दी के चौथे दशक में बंगाल (1840), बम्बई (1840) और मद्रास (1843) में प्रेसीडेंसी बैंकों की स्थापना की गई। इन बैंकों ने सरकार के बैंकों के रूप में कार्य किया। इसके साथ ही, अनेक दूसरे व्यापारिक बैंकों की स्थापना हुई। 1935 में रिज़र्व बैंक ऑफ इण्डिया की भी स्थापना की गई। आधुनिक बैंकिंग प्रणाली का विकास बाज़ार के विस्तार में सहायक सिद्ध हुआ।

1.4.4 स्वतंत्रता की पूर्व-संध्या पर औद्योगिक उपरिढाँचे की दशा

देश में असंतुलित औद्योगिक विकास के लिए बहुत कुछ उपयुक्त उपरिढाँचे की अनुपलब्धि को भी ज़िम्मेदार ठहराया जा सकता है। नि:संदेह अंग्रेजी शासन के दौरान सिंचाई, रेल, सड़क, टेलिफोन आदि उपरिढाँचे की सेवाओं के विस्तार के प्रयास किए गए। लेकिन आवश्यकताओं की तुलना में यह अपर्याप्त ही सिद्ध हुए। सम्भवत: नहरों के विस्तरित जाल के अलावा उपरिढाँचे के नाम से सभी सेवाओं का घोर अभाव था। संचार सेवाएँ समय से पिछड़ गईं थीं और आर्थिक संव्यवहारों के योग्य नहीं रह गईं थीं। नई क्षमता के निर्माण के अभाव में, ऊर्जा की आपूर्ति आवश्यकताओं की तुलना में कहीं कम थी। यह तेज गति से औद्योगिक विकास के लिए पूर्णत: प्रतिकूल थी। इसी तरह से रेल प्रणाली और भाड़ा नीति पत्तनों से शहरों की ओर एवं शहरों से पत्तनों की ओर कच्चे माल और निर्मित माल के परिवहन के अनुकूल थीं, सामान्य आर्थिक विकास नहीं। परिणामत: घरेलू उपयोग की अपेक्षा कच्चे माल का निर्यात कर दिया जाता था तथा घरेलू उपभोग के वास्ते निर्मित माल का आयात किया जाता था। संक्षेप में, उपरिढाँचे की व्यवस्था स्वतंत्रता-उपरान्त सबसे पहली माँग थी।

1.4.5 स्वतंत्रता की पूर्व-संध्या पर सामाजिक संस्थाओं की दशा

स्वतंत्रता के समय भारत की सामाजिक परिस्थिति डाँवाडोल थी। अंग्रेज़ों के भारत आने से पहले यहाँ की तीन प्रमुख सामाजिक व्यवस्थाएँ निम्नलिखित थीं : आत्मनिर्भर गाँव, जाति-प्रथा एवं संयुक्त, परिवार प्रणाली। जब अंग्रेजों ने भारत छोड़ा, गाँव अपना स्वतंत्र, आत्म-निर्भर स्वरूप खो बैठे थे। जाति-प्रथा बढ़ते आर्थिक दबावों में अपना अस्तित्व खोती जा रही थी। संयुक्त परिवार प्रणाली गाँवों में तो बनी हुई थी लेकिन शहरों में समाप्त होती जा रही थी। संक्षेप में, सामाजिक व्यवस्था बदल रही थी। लेकिन यह तेज़ गति से आर्थिक विकास के अनुकूल नहीं थी।

बोध प्रश्न 2

1) कृषि की निम्न उत्पादकता के प्रमुख कारकों की संक्षेप में समीक्षा कीजिए।

.....

.....

.....

2) ब्रिटिश राज के दौरान भारत का औद्योगिक विकास एकतरफा और अधूरा था। समीक्षा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

3) किस तरह के उद्योग अर्थव्यवस्था की उत्पादन-क्षमता में संवृद्धि करते हैं?

.....

.....

.....

.....

1.5 स्वतंत्रता के समय भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ

भाग 1.4 में हमने स्वतंत्रता की पूर्व-संध्या पर भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों की परिस्थिति की चर्चा की है। उपरोक्त विवरण के आधार पर उस समय की भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताओं का विश्लेषण दो उपवर्गों में किया जा सकता है : (i) भारतीय अर्थव्यवस्था एक अविकसित एवं पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्था, एवं (ii) भारतीय अर्थव्यवस्था एक पराश्रयी अर्थव्यवस्था। पिछड़ापन एवं पराश्रयता के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था गरीबी उन्मूलन एवं सामान्य जन को उपयुक्त जीवन-स्तर के साधन उपलब्ध करवाने में असमर्थ है। स्थिति इस संदर्भ में और जटिल हो गई जब अंग्रेज़ों ने जाते-जाते देश का दो हिस्सों में बँटवारा कर दिया। देश के विभाजन के परिणामों का अध्ययन हम अलग से अगले भाग में करेंगे। प्रस्तुत भाग में हम उपरोक्त दो उपवर्गों के अन्तर्गत भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं का विश्लेषण करेंगे।

1.5.1 भारतीय अर्थव्यवस्था : एक अल्प-विकसित अर्थव्यवस्था

इस वर्ग की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित थीं :

i) **निम्न प्रति व्यक्ति आय, व्यापक गरीबी एवं बार-बार होने वाले अकाल**– निम्न प्रति व्यक्ति आय आर्थिक पिछड़ेपन की द्योतक थी। वर्ष 1950-51 में भारत की प्रति व्यक्ति, आय 238 रुपए अनुमानित की गई अर्थात् प्रति माह औसतन प्रत्येक व्यक्ति को मात्र 20 रुपये अथवा प्रतिदिन केवल साठ पैसे की आय ही प्राप्त होती थी। साथ ही आय के वितरण में घोर विषमताएँ पाई जाती थीं। अर्थात् कुछ लोगों को साठ पैसे की आय भी नहीं प्राप्त होती थी। परिणामत: जनसंख्या के बड़े हिस्से की आर्थिक स्थिति दयनीय थी। अपर्याप्त एवं असंतुलित भोजन, पिछड़ी हुई आवास परिस्थिति या आवास का कुल अभाव, तन ढकने के लिए कपड़े का अभाव, नंगे पैर, कमर-तोड़ मेहनत, क्षीण स्वास्थ्य, अज्ञानता, सामाजिक सुरक्षा का अभाव, व्यापक बेरोज़गार, शोषण, कमर-तोड़ लगान का बोझ, बढ़ते कर्ज, प्रशासन से सहयोग का अभाव इन सब बातों से मिलकर आम जीवन यातनापूर्ण बनकर रह गया था।

अंग्रेजी शासन के दौरान अकालों की बारम्बारता से आम आदमी पीड़ित था। सूखा, बाढ़ एवं टिड्डी-दल के प्रकोप किसी भी कारण से अलग फसल नष्ट हो जाती थी तो खाद्यान्न की अनुपलब्धि तथा आय के अभाव में भुखमरी फैल जाती थी। अंग्रेज़ी शासन के आखिरी दौर में ही केवल अकालों में कुछ कमी दिखलाई दी। यह नहरों के जाल के विस्तार, रेलों के विस्तार और कुछ प्रशासनिक कार्यवाई से ही सम्भव हो पाया। लेकिन सन् 1943 के अकाल ने पुन: स्पष्ट कर दिया कि भारत को अकाल से पूर्णत: मुक्ति नहीं मिल पाई थी।

ii) **भारतीय अर्थव्यवस्था में व्याप्त गतिहीनता**– ब्रिटिश शासन के दौरान न केवल गरीबी सब तरफ फैल गई थी, बल्कि उससे भी बुरी बात थी कि गरीबी बढ़ती जा रही थी और उससे निपटने के लिए कोई उपाय नहीं सोचा जा रहा था। अर्थव्यवस्था जड़ और गतिहीन हो गई थी। गतिहीनता का बोध ब्रिटिश काल में प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि-दर से भी लगाया जा सकता है।

तालिका-2 : प्रति-व्यक्ति आय की वार्षिक वृद्धि-दर (प्रतिशत)

अवधि	दर
1860-1890	0.64
1890-1920	0.72
1920-1940	0.16
1940-1950	(-) 0.13

स्रोत : वी.बी. सिंह (संपा.) की पुस्तक "इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया 1857-1956" में एम. मुखर्जी का "नेशनल इनकम" पर लेख।

तालिका-2 से स्पष्ट है कि इस दौरान भारत की प्रति-व्यक्ति आय में नगण्य वृद्धि हुई। गतिहीनता का एक और प्रमाण कृषि उत्पादन की मात्रा तथा उत्पादकता में भी मिलता है। कृषि उस समय जीविका का एकमात्र साधन थी। 1893-94 से 1945-46 के 52 वर्षों की अवधि में कृषि उत्पादन में कुल केवल 10 प्रतिशत की वृद्धि हुई। खाद्यान्न का सूचकांक जोकि 1893-94 में 100 था, 1936-37 से 1945-46 की अवधि में कम होकर 93 रह गया था। इसी अवधि में खाद्यान्न की प्रति-व्यक्ति उपलब्धता 587 पौंड से कम होकर 300 पौंड रह गई थी, अर्थात् इसमें लगभग 32 प्रतिशत की कमी हुई। कृषि क्षेत्र में गतिहीनता घर किए हुए थी जो विस्तृत रूप से फैली हुई गरीबी में दिखाई देती थी। गतिहीनता और बढ़ती हुई गरीबी का निम्न बातों से पता चलता था : बार-बार अकाल की परिस्थितियों का पाया जाना, किसानों पर ऋणग्रस्तता का बढ़ता हुआ बोझ, खेतिहर किसानों से ग़ैर-खेतिहर व्यक्तियों के हाथों भूमि का चला जाना, आदि। ये सब घटनाएँ यह सिद्ध करती हैं कि भारत में गरीबी का विस्तार हो रहा था।

iii) **व्यापक अज्ञानता एवं जनसंख्या वृद्धि की ऊँची दर**– गरीबी एवं पिछड़ापन व्यापक अज्ञानता एवं ऊँची जन्म तथा मृत्यु-दर में भी स्पष्ट दिखलाई देते थे। 1941 की जनगणना के अनुसार भारत में साक्षरता दर मात्र 17 प्रतिशत थी (कुल जनसंख्या में 10 वर्ष से एक आयु वाले बच्चों को शामिल नहीं किया गया था)। ग्रामीण क्षेत्रों एवं स्त्रियों में तो साक्षरता दर राष्ट्रीय औसत से कहीं कम थी। बच्चों में से अधिक स्कूल नहीं जाते थे, विशेषरूप से लड़कियाँ।

पिछली हुई अर्थव्यवस्थाओं में जैसा सामान्य होता है भारत में भी ऊँची जन्म-दर एवं मृत्यु-दर की स्थिति पाई जाती थी। 1931-41 में भारत में जन्म-दर 45.2 प्रति हज़ार जोकि अधिकतम संभव स्तर के ही लगभग बराबर थी। 1911-21 के दशक में मृत्यु-दर 40 प्रति हज़ार थी। अगले तीन दशकों में मृत्यु-दर में कमी आई। 1921-31 में यह 36.3 तथा 1931-41 में 31.3 प्रति हज़ार हो गई। मृत्यु-दर में सुधार सामान्य जीवन में सुधार का द्योतक न होकर मात्र (i) अकालों को दूर करने की योग्यता, तथा (ii) महामारियों पर काबू पाने की योग्यता का ही परिणाम था। मृत्यु-दर में कमी के परिणामस्वरूप जनसंख्या वृद्धि-दर तेज़ हो गई और भारत को बढ़ती हुई जनसंख्या की स्थिति का सामना करना पड़ा।

iv) **शहरीकरण का अभाव–** अर्थव्यवस्था का पिछड़ापन शहरीकरण के अभाव में झलकता था। सभी विकसित देशों में शहरी क्षेत्रों का प्रभुत्व होता है। जनसंख्या का बड़ा भाग शहरी क्षेत्रों में निवास करता है। किन्तु ब्रिटिश शासन के दौरान भारत में जनसंख्या का बड़ा भाग ग्रामों में ही निवास करता था चूँकि कृषि ही जीवन-निर्वाह का प्रमुख साधन थी। 1941 में देश की कुल जनसंख्या का केवल 14.2 प्रतिशत भाग ही शहरों में रहता था। इस तरह प्रत्येक सात व्यक्तियों में से छः व्यक्ति गाँवों में रहते थे जहाँ आधुनिक सुविधाएँ प्रायः उपलब्ध नहीं थी।

v) **असंतुलित व्यावसायिक ढाँचा**– व्यावसायिक ढाँचे से यह अभिप्राय है कि देश की कार्यशील जनसंख्या का विभिन्न व्यवसायों में वितरण किस प्रकार का है। विभिन्न व्यवसायों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है : (क) कृषि अथवा प्राथमिक क्षेत्र, (ख) उद्योग अथवा द्वितीयक क्षेत्र, एवं (ग) सेवा अथवा तृतीयक क्षेत्र। विर्कसित देशों की जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्रों में लगा होता है। इसके विपरीत, अल्पविकसित देशों की कार्यशील जनसंख्या का बड़ा भाग प्राथमिक क्षेत्र से अपनी जीविका प्राप्त करता है।

ब्रिटिश शासन के दौरान, जैसा कि हमने पहले भी देखा है, ग्रामीण एवं शहरी दस्तकारियों का तेज़ गति से पतन हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि श्रमिक कृषि की ओर भागने लगे। कृषि पर आश्रित रहने वाले व्यक्तियों की संख्या में असाधारण वृद्धि हुई। सन् 1891 में भारत की कुल कार्यशील जनसंख्या का केवल 60 प्रतिशत भाग ही कृषि पर निर्भर रहता था। 1901 में यह बढ़कर 65 प्रतिशत और 1951 में 72 प्रतिशत हो गया। इन आँकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि भारत अवनति की ओर जा रहा था। देश में कृषि-योग्य भूमि की कमी महसूस की जाने लगी। बढ़ती जनसंख्या के दबाव में कृषि की उत्पादकता में गिरावट में आई। फलस्वरूप, हम खाद्यान्न की आवश्यकताओं के लिए दूसरे देशों पर निर्भर हो गए।

गैर-कृषि क्षेत्र न केवल बहुत छोटा था बल्कि असंतुलित भी था। इस क्षेत्र में विभिन्न सेवाएँ (जैसे व्यापार, साहूकारी, परिवहन एवं संचार, प्रशासनिक सुरक्षा एवं सामाजिक सेवाएँ) पाई जाती थीं न कि उद्योग। उद्योग प्रमुखत: लघु आकार के ही थे आधुनिक बड़े आकार के कारखाने नहीं थे। बड़े आकार के उद्योग जो थे भी उनके हल्की उपभोक्ता वस्तुओं का निर्माण किया जाता था। जबकि विकसित देश औद्योगिक क्रांति से गुज़र रहे थे, भारत इस सबसे अछूता रहा और प्रमुखत: कृषि-प्रधान देश बना रहा।

vi) **नई सामन्ती अर्थव्यवस्था**– नई सामन्ती अर्थव्यवस्था आर्थिक पिछड़ेपन की एक और द्योतक थी। यह परिस्थिति कृषि एवं गैर-कृषि दोनों क्षेत्रों में पाई जाती थी। कृषि में पूँजीवादी तत्त्व प्रवेश पा चुके थे जो कि इस बात से सिद्ध होता था कि अब खेती बड़े-बड़े ज़मीदारों के हाथों आती जा रही थी जोकि मज़दूरी के बदले में किसानों से अपने खेतों पर खेती-बाड़ी का काम करवाते थे। साथ ही मज़दूरी प्राप्त खेतिहर श्रमिकों के वर्ग का आकार तेज़ गति से बढ़ने लगा।

इसी तरह, विदेशी पूँजी एवं उपक्रम ने पूँजीवादी क्षेत्र के निर्माण में प्रत्यक्ष योगदान दिया। 19वीं सदी के मध्य से बाज़ार अर्थव्यवस्था की प्रवृत्ति तेज़ होने के साथ ही भारतीय पूँजीवादी क्षेत्र का विकास होने लगा। ब्रिटिश शासन के अंतिम दौर तक पहुँचने पर गैर-कृषि क्षेत्र में भी पूँजीवादी तत्त्व अपना स्थान बना चुके थे।

संक्षेप में, ब्रिटिश शासन के दौरान अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में पूँजीवादी तत्त्व प्रवेश पा चुके थे। किन्तु ये इतने सुदृढ़ नहीं हो पाए थे कि वे सामन्तवादी ताकतों को समूल उखाड़ फेंकते।

1.5.2 भारतीय अर्थव्यवस्था : एक पराश्रयी अर्थव्यवस्था

ब्रिटिश शासन के दौरान भारत के साथ एक कॉलोनी जैसा ही व्यवहार किया गया। हालाँकि इस दौरान भारत में अनेक महत्त्वपूर्ण आर्थिक परिवर्तन आए लेकिन मोटे तौर पर भारतीय अर्थव्यवस्था पराश्रयी अर्थव्यवस्था ही बनी रही जैसाकि निम्नलिखित संकेतकों से स्पष्ट होता है।

i) **विदेशी व्यापार की संरचना एवं दिशा**– किसी देश के विदेशी व्यापार की संरचना से पता चलता है कि वह देश किस प्रकार की वस्तुओं में व्यापार करता है। आयात और निर्यात की जाने वाली वस्तुओं के आधार पर हम देश की आर्थिक प्रगति की भी समीक्षा कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, विकसित देशों से सामान्यत: मशीनों तथा मशीन-निर्मित वस्तुओं का निर्यात किया जाता है जबकि इन देशों के आयात में कच्चे माल तथा सोना-चाँदी आदि का अधिक भाग रहता है। इसके विपरीत, अल्प-विकसित देशों के निर्यात मुख्यत: कच्चे माल और सोना-चाँदी के होते हैं जबकि इनके आयात में मशीनें और निर्मित वस्तुएँ ही प्रमुख होती हैं।

अंग्रेज़ों के भारत आने से पहले यहाँ के कपड़े और अनेक विलासिता एवं आरामदायक वस्तुओं का भारी मात्रा में निर्यात होता था। अन्य देशों से इनके बदले में सोना और चाँदी प्राप्त होता था। अंग्रेज़ी शासन की स्थापना के साथ ही भारत के विदेशी व्यापार की संरचना बदल गई। भारत उन वस्तुओं का आयात करने के लिए मजबूर हो गया जोकि कुछ समय पहले ही यह दूसरे देशों को भेजता था। इसी तरह, देश से भारी मात्रा में कृषि-जन्य पदार्थों और कच्चे माल का निर्यात किया जाने लगा। विदेशी व्यापार की संरचना से यह प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है कि देश के संसाधनों का अंग्रेज़ों ने दुरुपयोग किया।

इसी तरह, भारत के विदेशी व्यापार का अर्थ एकमात्र इंग्लैण्ड से लेन-देन तक ही सीमित रह गया। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में भारत के कुल आयात का लगभग 69 प्रतिशत भाग केवल इंग्लैण्ड से ही प्राप्त होता था। भारत के कुल निर्यातों का 29 प्रतिशत भाग इसी देश को जाता था। प्रथम विश्व युद्ध

के बाद से अंग्रेज़ों की पकड़ कुछ ढीली पड़ने लगी। अमेरिका, जापान, जर्मनी आदि देशों के साथ भारत के व्यापारिक संबंध धीरे-धीरे बढ़ने लगे। किंतु, इसके बावजूद भी भारत का विदेशी व्यापार बहुत हद तक इंग्लैण्ड के साथ बँधा हुआ था।

ii) **विदेशी पूँजी का प्रभुत्व**– भारत के औपनिवेशवादी स्वरूप का एक अन्य द्योतक यह था कि भारतीय अर्थव्यवस्था के सभी प्रमुख क्षेत्रों में विदेशी पूँजी का प्रभुत्व स्थापित हो गया था। विदेशी पूँजी निवेश निम्नलिखित ढाँचों तक केंद्रित रहा :

क) आर्थिक उपरिव्यय जैसे रेलें, पत्तन, व्यापारिक जलरानी एवं सार्वजनिक सेवाएँ जैसे विद्युत-उत्पादन एवं जल-आपूर्ति।

ख) प्राथमिक उत्पादन एवं निर्यात के लिए हल्के निर्माण जैसे चाय, कॉफी, रबड़ बागान, पटसन की मिलें, चमड़े के कारखाने आदि।

ग) कोयला एवं स्वर्ण खनन।

घ) बैंकिंग, वित्त, बीमा एवं व्यापार।

च) घरेलू बाज़ार के आपूर्ति के लिए कुछ निर्माण उद्योग जैसे सूती एवं नरम कपड़ा, तम्बाकू, कागज़, छपाई-उद्योग, इंज़ीनियरींग वर्कशॉप, विनिर्माण आदि।

ब्रिटिश पूँजी उन उद्योगों तक केंद्रित रही जोकि इंग्लैण्ड के उद्योगों के पूरक के रूप में काम करते थे। अर्थात् अंग्रेज़ सरकार इंग्लैण्ड के हितों की पोषक थी न कि भारत के हितों की। दूसरे विश्व-युद्ध के परिणामस्वरूप विदेशी स्वतंत्रता के समय भारतीय अर्थव्यवस्था विदेशी पूँजी के प्रभाव से जकड़ी हुई थी।

iii) **पूँजीगत सामान के लिए विदेशों पर निर्भरता**– आर्थिक पिछड़ेपन के परिणामस्वरूप भारत आर्थिक विकास के लिए आवश्यक पूँजीगत सामान की आपूर्ति के वास्ते विदेशों पर पूर्णत: निर्भर था। घिसी हुई पूँजीगत सामान का प्रतिस्थापन भी आयात द्वारा ही हो पाता था। उपभोग की अनेक आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति भी आयातों द्वारा ही सम्भव हो पाती थी। सुरक्षा के सामान एवं राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए अन्य सभी साधनों के लिए भी भारत विदेशों पर ही निर्भर था।

1.6 भारत का विभाजन

भारत छोड़ने से पहले अंग्रेज़ों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को एक और चोट पहुँचाई। अंग्रेज़ों ने देश का टुकड़ों में विभाजन कर दिया। ये दो टुकड़े भारत संघ और पाकिस्तान के नाम से जाने जाते हैं। पाकिस्तान के दो बड़े भाग थे : पश्चिमी पाकिस्तान और पूर्वी पाकिस्तान। सन् 1971 में पाकिस्तान का पूर्वी भाग पश्चिमी भाग से अलग हो गया। यह स्वतंत्र देश अब "बंग्लादेश" के नाम से जाना जाता है। देश के विभाजन के बाद भारत संघ के हिस्से में अविभाजित भारत की कुल भूमि का 77 प्रतिशत हिस्सा और और कुल जनसंख्या का 82 प्रतिशत हिस्सा आया।

भारत के विभाजन से देश में पूरी तरह अव्यवस्था फैल गई। बहुत बड़ी संख्या में हिन्दू और मुसलमान अपने-अपने ठिकानों को छोड़कर चले गए। इतने बड़े पैमाने पर जनसंख्या का स्थानांतरण शायद ही पहले कभी हुआ था। इस स्थानांतरण के कारण अनेक गंभीर समस्याएँ उत्पन्न हुईं। इसमें पाकिस्तान से भारत में आए शरणार्थियों को पुन: बसाने की समस्या सबसे अधिक गंभीर और विकट थी। सरकार से पर्याप्त सहायता और प्रोत्साहन दिए जाने के परिणामस्वरूप इस समस्या के समाधान में बहुत समय नहीं लगा।

विभाजन से देश की अर्थव्यवस्था पर कुछ और भी प्रभाव पड़े जिनके कारण अनेक समस्याएँ उत्पन्न हुईं। इनमें से प्रमुख समस्याएँ निम्नलिखित थीं :

1) **खाद्यान्न की कमी (Food shortage)** : सन् 1937 में बर्मा के भारत से अलग हो जाने के बाद से ही देश में खाद्यान्न की कमी महसूस की जाने लगी थी। बर्मा में चावल का उत्पादन बहुत मात्रा में होता था और इसकी आपूर्ति सारे देश में की जाती थी। पश्चिमी पंजाब और सिंध के क्षेत्र अविभाजित भारत के "अनाज के भण्डार" कहे जाते थे। इन क्षेत्रों से भारत के दूसरे भागों को अनाज की आपूर्ति

की जाती थी। विभाजन के बाद ये क्षेत्र पाकिस्तान में चले गए। परिणामस्वरूप, भारत में खाद्यान्न की गंभीर समस्या महसूस की जाने लगी। ऐसा अनुमान है कि उस समय भारत में लगभग 25 से 30 लाख टन खाद्यान्न की कमी थी, जबकि दूसरी ओर पाकिस्तान में लगभग 7.5 लाख टन अतिरिक्त खाद्यान्न उपलब्ध था।

2) **कच्चे माल की कमी :** अनेक कृषि-जन्य पदार्थों की आपूर्ति उन क्षेत्रों से की जाती थी जोकि विभाजन के बाद पाकिस्तान में चले गए। इसके विपरीत, इन पदार्थों को कच्चे माल के रूप में उपयोग करने वाली अधिकांश मिलें भारत में ही स्थित थीं। इन मिलों को कच्चा माल उपलब्ध नहीं हो पाया और अनेक कारखाने बंद हो गए। प्रभावित उद्योगों में प्रमुख थे– सूती कपड़ा उद्योग, कागज़, चमड़ा और कुछ रसायन आदि।

3) **औद्योगिक ढाँचे में अव्यवस्था :** विभाजन के कारण देश का समस्त औद्योगिक ढाँचा बिगड़ गया। इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित थे :

   i) कच्चे माल की आपूर्ति का अभाव;

   ii) विभाजन के बाद अनेक समृद्ध और सम्पन्न क्षेत्रों के अलग हो जाने के बाद अनेक उद्योगों के बाज़ार का आकार बहुत संकुचित हो गया। इनमें प्रमुख थे– सूती, रेशमी और ऊनी कपड़ा, हौज़री, साबुन, रबड़ की वस्तुएँ आदि;

   iii) विभाजन के बाद भारी संख्या में निपुण कारीगर भारत छोड़कर चले गए। इनकी कमी महसूस होने लगी; और

   iv) विभाजन के परिणामस्वरूप अनेक क्षेत्र, जो अन्यथा औद्योगिक रूप से विकसित थे, असुरक्षित हो गए। अनेक कारखाने जोकि सीमा के आस-पास स्थित थे, ऐसे क्षेत्रों से हटाए जाने लगे।

संक्षेप में, विभाजन के परिणामस्वरूप समस्त औद्योगिक ढाँचा बिगड़ गया। पंजाब और बंगाल में स्थिती विशेष रूप से गंभीर थी।

4) **रेल पर प्रभाव (Effects on Railways) :** विभाजन से रेल-व्यवस्था पर भी बुरे प्रभाव पड़े। संयुक्त भारत में उस समय 31,565 मील लंबी रेल लाइन बिछी हुई थी। इनमें से भारत को 24,565 मील लंबी लाइन मिली। विभाजन से प्रभावित क्षेत्रों में यह आवश्यक हो गया कि रेल लाइनों का पुनर्गठन किया जाए। अन्य लाइनें जोकि पाकिस्तान की सीमा के दूसरी ओर जाती थीं हटाई गईं। इन क्षेत्रों में रेल व्यवस्था को नई परिस्थितियों के अनुकूल बनाने में अधिक खर्च करना पड़ा।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि विभाजन से भारतीय अर्थव्यवस्था पर बहुत बुरे प्रभाव पड़े। भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में अव्यवस्था फैल गई। कृषि, उद्योग, परिवहन, संचार आदि विभिन्न क्षेत्रों की गतिविधियों में रुकावट आई। विभाजन का सबसे भयंकर परिणाम यह हुआ कि देश में गरीबी की जड़ें और मज़बूत हो गईं। भारत पहले ही गरीब और पिछड़ा हुआ देश था। इस नई चोट के कारण गरीबी ने विकराल रूप धारण कर लिया।

बोध प्रश्न 3

1) भारत में विकराल रूप से फैली गरीबी के लिए ज़िम्मेदार नीति के चार पहलू बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) किन्हीं चार ऐसी विशेषताओं को उल्लेख कीजिए जिनसे यह आभास होता है कि स्वतंत्रता की पूर्व संध्या पर भारतीय अर्थव्यवस्था एक निर्भर अर्थव्यवस्था थी।

.....

.....

.....

.....

3) देश के विभाजन के परिणामस्वरूप उत्पन्न चार प्रमुख समस्याएँ बताइए।

.....

.....

.....

.....

4) आर्थिक क्रिया के उन चार क्षेत्रों का उल्लेख कीजिए जिनमें ब्रिटिश शासन के दौरान विदेशी पूँजी केंद्रित रही।

.....

.....

.....

.....

1.7 सारांश

संक्षेप में, स्वतंत्रता के समय भारतीय अर्थव्यवस्था पूरी तरह से अंग्रेज़ों के चंगुल में फँसी हुई थी। पराधीनता और निर्भरता के काले बादल भारतीय अर्थव्यवस्था पर मंडराने लगे। अर्थव्यवस्था पूरी तरह से पिछड़ी हुई थी। बढ़ती जनसंख्या के दबाव में खेतिहर भूमि की भारी कमी महसूस की जा रही थी। उद्योग एवं संबंधित धंधे पहले ही लगभग पूरी तरह समाप्त हो चुके थे। कोई भी औद्योगिक ढाँचा ऐसा नहीं था जिसका कि वर्णन किया जा सके। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय, भारत के विभाजन से खाद्यान्नों की कमी, कच्चे माल की कमी और औद्योगिक ढाँचे में अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न हुई थी। विदेशी व्यापार विदेशियों के हितों का साधन मात्र बनकर रह गया था।

1.8 शब्दावली

आत्म-निर्भर ग्राम : ऐसी ग्रामीण व्यवस्था जिसमें समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप सभी वस्तुओं का उत्पादन करना संभव होता है।

जोत : खेती की एक इकाई।

विकसित अर्थव्यवस्था : वह अर्थव्यवस्था जिसमें प्रमुख रूप से विकसित तकनीक की सहायता से औद्योगिक वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है।

बाज़ार प्रणाली : वह व्यवस्था जिसमें सभी आर्थिक इकाइयाँ अपने बारे में निर्णय लेने में स्वतंत्र होती हैं।

व्यावसायिक फसलें : वे कृषि उत्पाद जो प्रमुखत: विनिर्माण उद्योग में कच्चे माल के रूप में प्रयुक्त होते हैं।

स्टर्लिंग : इंग्लैण्ड की मौद्रिक इकाई।

निष्कासन : अंग्रेज़ों द्वारा भारत के संसाधनों का औपनिवेशिक शोषण।

प्रति-व्यक्ति आय : राष्ट्रीय आय को कुल जनसंख्या से भाग देने पर जो परिणाम प्राप्त होता है।

अकाल : मात्र जीवन-निर्वाह के लिए खाद्यान्न की अनुपलब्धि।

व्यावसायिक ढाँचा : कार्यशील जनसंख्या का विभिन्न व्यवसायों में वितरण।

1.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Dutt R. C. (1976). *Economic History of India,* Volume I and II, Publication Division, Government of India, New Delhi.

Gadgil D.R. (1938). *Industrial Evolution of India*, Oxford University Press, Bombay.

First Five Year Plan 1951-56, (1952) Planning Commission, Government of India, New Delhi.

Dharma Kumar (ed) (1982). *Cambridge Economic History of India, Vol. II,* Orient Longamns, Hyderabad.

Singh V.B. (ed) (1975). *Economic History of India*, Allied Publishing House, New Delhi.

1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) उप-भाग 1.2.1 देखिए।

2) गाँव आत्म-निर्भर उत्पादन की इकाई थे। सभी उत्पादन का उपभोग गाँव में ही कर लिया जाता था। बाहरी लेन-देन सीमित मात्रा में ही होते थे। उप-भाग 1.2.1 देखिए।

3) उप-भाग 1.2.2 देखिए।

4) उप-भाग 1.2.3 देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) उप-भाग 1.4.1 अच्छी तरह से पढ़िए।

2) उप-भाग 1.4.2 अच्छी तरह से पढ़िए।

3) उप-भाग 1.4.2 देखिए।

बोध प्रश्न 3

1) उप-भाग 1.5.1 देखिए।

2) उप-भाग 1.5.2 देखिए।

3) उप-भाग 1.6 देखिए।

4) उप-भाग 1.5.2 देखिए।